रोड़-मरहठा प्रसंग
कुछ शंकाएँ : जो समाधान चाहती हैं

डॉ० सुरेन्द्र सिंह कादियाण

रोड़-मरहठा प्रकरण को लेकर बिरादरी में एक बहस छिड़ गई है। लेकिन बुद्धिजीवी वर्ग न जाने क्यों अपने दबडे से बाहर निकल कर न इसके पक्ष में और न ही इसके विरोध में खड़ा नजर आता है बल्कि तटस्थ भावना से इस तमाशे को देख रहा है। यह तटस्थता बिरादरी को कहाँ ले जायेगी इसका फैसला हम नहीं आने वाला भविष्य करेगा। रोड़ -मरहठा प्रसंग में रोड़ द्रष्टा के पिछले अंक में जो सामग्री प्रकाशित हुई उसे पढ़ कर जहाँ इसके समर्थक सकते में, असमंजस में, अन्यमनस्कता में आ गये हैं वहीं इसके विरोधियों में उत्साह, उत्सुकता, सक्रियता झलकने लगी है। इस प्रसंग को लेकर बिरादरी में जो शंकाएँ उठ खड़ी हुई हैं वे परस्पर की बातचीत में खुल कर सामने आती हैं। इन सभी शंकाओं को लिपिबद्ध करके यहाँ परोसा जा रहा है। मैं इस विषय को पक्ष अथवा विपक्ष का मुद्दा समझ कर नहीं उठा रहा बल्कि भीतर का सच आखिर है क्या यह जानने के लिये उठा रहा हूँ अतः इस विषय पर बहस करने की नहीं बल्कि इतिहास का अध्ययन व चिन्तन करने की जरूरत है। अपने विरोधियों का सामना जिस ढंग से रोड़-मरहठा प्रसंग के दावेदार कर रहे हैं वह शैली राजनीतिक व्यक्तियों की है न कि इतिहास के विद्यार्थियों की अतः सच्चाई सामने आ जाने पर भी ये लोग उसे मान ही लेंगे इसके कोई आसार फिलहाल सामने नहीं आ रहे हैं क्योंकि अपनी राजनीति चलाने के लिये, अपने पीछे भीड़ इक्कठी करने की उनके हाथ में जो यह गीदड़ सिंगी आ गई है उसे वह सहज में छोड़ने को क्योंकर तैयार होंगे? पाठकों से विनम्र अनुरोध है कि इस प्रसंग पर उठ रही निम्नलिखित शंकाओं पर खुद विचार करें व निर्णय लें कि आखिर सच्चाई क्या है?

(क) रोड़-मरहठा प्रसंग के नियंताओं ने ''रोड़ों का मराठा होने के कारण व प्रमाण'' शीर्षक से एक पृष्ठ का पर्चा छपवा कर पूरी बिरादरी में बंटवाया है। इस पर्चे को यदि सावधानी से पढ़ा जाये तो निष्कर्ष यह निकलता है कि इसमें ऐसा कुछ भी नहीं है जो तथ्यों की कसौटी पर, तर्क की कसौटी पर, इतिहास की कसौटी पर, परम्परा की कसौटी पर या फिर व्यवहार की कसौटी पर खरा उतर सके। वास्तव में यह पर्चा बेमेल की खिचड़ी है, परस्पर-विरोधी बातों से भरा हुआ है, तर्कहीनता व अनैतिहासिकता का पुंज है और पूर्वापर का ध्यान रखे बिना इसमें विचार रखे गये हैं। संक्षेप में, दो लफ्जों में इस पर्चे पर यदि प्रतिक्रिया दी जाये तो कहना होगा कि यह पर्चा किसी सिरफिरे की बकवास लगता है।

(ख) एक पृष्ठ के इस पर्चे पर किसी लेखक का नाम नहीं है, किसी संस्था का नाम नहीं है, किसी इतिहासकार अथवा किसी ऐतिहासिक पुस्तक का उल्लेख नहीं है। यहाँ तक कि जानबूझ कर उस प्रैस का नाम भी नहीं दिया गया है जिसने इस पर्चे को छापा है। जाहिर है कि इस पर्चे की जिम्मेदारी लेने को कोई भी तैयार नहीं है। इससे बढ़कर गैर-जिम्मेदाराना हरकत और क्या हो सकती है? इन कमियों के रहते साफ हो जाता है कि इस पर्चे में जो लिखा गया है उस पर पर्चा लिखने वाले को खुद ही विश्वास नहीं है। यह पर्चा दोबारा छपवाया गया है लेकिन फिर भी जानबूझ कर इन कमियों को दूर करने की कोशिश नहीं की गई। स्टेज से कही गई बातों से व्यक्ति मुकर जाता है लेकिन लिखित में कही गई बात से फंस भी सकता है इसलिये जानबूझ कर ये कमियां रखी गई हैं जो पर्चा लिखने वाले व बंटवाने वाले की आपराधिक मानसिकता को स्पष्ट करता है। इस पर्चे को एक छलावे और भुलावे की संज्ञा दी जा सकती है जिससे बिरादरी-बन्धुओं को बच कर रहना चाहिए।

(ग) इस पर्चे की शुरुआत इन शब्दों से की गई है कि-''रोड़ पानीपत की तीसरी लड़ाई के बचे हुए वे मराठा हैं जो शर्म के मारे अपने देश वापिस नहीं गए तथा भय के मारे अपनी पहचान छुपा कर कुरुक्षेत्र के दक्षिण के जंगलों में ही बस गए।'' अपने इस निष्कर्ष की पुष्टि में किसी ग्रंथ व इतिहासकार को उद्धृत न करना ही इस निष्कर्ष पर सवालिया निशान लगा देता है। किसी बात को मात्र हवा में उछाल देने से अथवा जोरदार ढंग से उसके समर्थन में प्रचार-अभियान चलाने से उसे इतिहास नहीं बनाया जा सकता। जैसे हजार बकरियों के मिमियाने से शेर का सिंहनाद पैदा नहीं हो सकता वैसे ही भीड़ से नारे व जयघोष लगवाने से कोई विचार इतिहास का स्वरूप ग्रहण नहीं कर सकता।

(घ) पानीपत का तीसरा युद्ध 14 जनवरी 1761 को हुआ था। मात्र 240 वर्ष के इस कालखण्ड में जो बात मराठा इतिहासकार न खोज सके, न कह सके और न ही आज तक किसी रोड़ बुजुर्ग के श्रीमुख से सुनी गई उसे किस आधार पर इतिहास का जामा पहनाया जा सकता है? कल्पना-प्रसूत समाघोष कभी इतिहास नहीं बना करता, मात्र हवा में बह कर खुद ही हवा हो जाया करता है। रोड़ मरहठा प्रसंग को भी इसी नियति का शिकार बन कर खत्म होना होगा।

(ङ) यदि शर्मदार मराठा सैनिक कुरुक्षेत्र के जंगलों में शरणागत हुए थे तो क्या महाराष्ट्र लौट जाने वाले सभी मराठा सैनिक, सरदार और सेनापति बेशर्म थे? क्या इस बात को मराठा

इतिहासकार या स्वाभिमानी मराठा लोग कभी स्वीकार अथवा सहन करेंगे?

(च) भय के मारे मराठा सैनिक अपनी पहचान कैसे छिपा कर रख सकते थे जबकि वे हरियाणावी या उर्दू भाषा न बोल सकते थे, न लिख सकते थे। मराठी भाषा बोलने वाले उन सैनिकों, उनकी औरतें व बच्चों को पहचानना क्या किसी के लिये कठिन हो सकता था? मूल मराठों का कद औसतन एक हरियाणवी की तुलना में ठिगना होता है, उनका रंग गेहुआं न होकर सांवला होता है, उनकी नाक तीखी व लम्बी न होकर दबी व चिपकी होती है, उनका पहनावा हरियाणा से अलग था, उनकी स्त्रियाँ घूँघट नहीं करती थीं और सूहे वाली धोती बाँधती थीं, हरियाणवी शाकाहारी और मराठा मांसाहारी थे। वैसे भी सैनिक का गठा-सधा शरीर उसे अलग पहचान देता है। इन सब स्थितियों के रहते मरहठा सैनिकों का हरियाणा में शरणागत होना पूरी तरह संदिग्ध लगता है।

(छ) यदि मराठा सैनिक कुरुक्षेत्र के दक्षिण के जंगलों में छिप गये थे तो पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, बिजनौर जिलों में तथा उत्तरांचल के हरिद्वार जिले के मैदानी क्षेत्रों में वे कैसे जाकर बस सके?

(ज) मराठा सैनिकों का हरियाणा अथवा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बसना कैसे सम्भव था जबकि यह समूचा क्षेत्र मुस्लिम-शासन के अन्तर्गत था? विशेषकर अहमदशाह अब्दाली की सेना को जब इसी रास्ते से वापस अफगानिस्तान लौटना था तब तो यह सम्भावना और अधिक क्षीण हो जाती है।

(झ) मराठा सैनिक यदि कुरुक्षेत्र के जंगलों में जा छिपे थे तो वे जंगलों से बाहर कब व कैसे निकले? रण के मैदान से वे कंगाल होकर लौटे थे तो जमीन खरीदने के लिये उनके पास धन कहाँ से आया? मुस्लिम शासक अपनी नाक के नीचे अपने ही शत्रुओं को सहज में बसने की स्वीकृति कैसे दे सकता था?

(ञ) यदि रोड़ जाति की उत्पत्ति शरणागत मराठा सैनिकों से हुई थी तो फिर सर्वखाप पंचायत, शोरम का इतिहास, जागे भाटों द्वारा संग्रह-संकलित किया गया इतिहास, अंग्रेज पुरातत्वज्ञों के निष्कर्ष जो यह सिद्ध करते हैं कि उत्तर भारत में मराठों के आगमन से पूर्व ही रोड़ जाति अस्तित्व में आ चुकी थी उसे कैसे झुठलाया जा सकेगा?

(ट) इतिहास यह भी दर्शाता है कि हरियाणा में रोड़ जाति का आगमन और पलायन अनेक कालखण्डों में राजन्य 7 रोहितायन 7 रोड़वाल 7 रोड़ के रूप में हुआ था और उनकी यह दीर्घ शृंखला स्पष्ट रूप से महाभारत-काल तक पहुँचती है। इस ऐतिहासिक प्रमाण को खण्डित करने की क्षमता रोड़ मरहठा प्रसंग में यदि है तो उसकी इतिहास-सम्मत पुष्टि होनी चाहिए थी जो नहीं हुई है।

(ठ) हरनाम सिंह मोंगा की पुस्तक "अरोड़वंशीय जातीय इतिहास" में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि उत्तर प्रदेश में पंजाब के अरोड़ों का आगमन औरंगजेब के समय में हुआ था। औरंगजेब का निधन 20 फरवरी 1707 को हुआ था। अर्थात् इसके 54 वर्ष बाद पानीपत का तीसरा युद्ध हुआ था। जाहिर है कि पंजाबी अरोड़े 60-70 वर्ष पहले इस क्षेत्र में आकर आबाद हो चुके थे। फिर यह कैसे माना जा सकता है कि रोड़ों की उत्पत्ति मराठों से हुई थी? रोडों की उत्पत्ति मराठों के बजाय क्या इन पंजाबी अरोडों से सम्भव नहीं हो सकती?

(ड) पंजाबी अरोड़ों की उत्पत्ति चन्द्रवंशी ययाति के पुत्रों से मानी गई है और रोड़ों के भाट भी रोड़ों की उत्पत्ति ययाति के पुत्रों से मानते हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के खतरी-अरोड़े भी अपनी उत्पत्ति ययाति के पुत्रों से मानते हैं। अपने को रोड़ मानने वाले लोग दिल्ली में भी बसे हैं जो हरियाणवी रोड़ से अलग हैं। टीपू सुलतान इस टी०वी० सीरियल में किसी टोनी रोड़ ने फोटोग्राफी की थी जो दिल्ली की निवासी है। ये सभी अपने को मूलतः सिन्ध से जोड़ते हैं। वैसे कभी रोहतक, महेश (सम्भवतः महम) व सिरसा का क्षेत्र रोड़वाल कहलाता था। होशियारपुर से मथुरा तक राजन्य गण की सत्ता रही है। ऐसी स्थिति में रोड़ों को मराठों का वंशज कैसे ठहराया जा सकता है? इस इतिहास से अनभिज्ञता होने के कारण ही इस कल्पित मिथक की रचना की गई है जो टिकने वाली नहीं है।

(ढ) मराठा वस्तुतः पठारी व पहाडी क्षेत्र के निवासी थे अतः व्यवहार, प्रवृत्ति और मानसिकता के आधार पर उनकी तुलना रोड़ों से नहीं की जा सकती। मराठा स्वभाव से कठोर, श्रमशील, अदम्य साहसी, दृढ़ संकल्प वाला, संघर्षशील, उग्र, बेचैन, असंतुष्ट, लूट-खसोट करने वाला, पहले वार करने वाला होता है जबकि रोड़ों का ऐसा स्वभाव नहीं है।

(ण) जिस रात पानीपत की लड़ाई खत्म हुई वह चांदनी रात थी। अहमदशाह अब्दाली की सख्त हिदायत थी कि 20-20 कोस तक भगोड़े मराठा सैनिकों का पीछा करके उनकी हत्या कर दी जाये ओर ऐसा ही किया गया। महादजी सिन्धिया का पीछा 120 मील तक किया गया था। सोनीपत और बहादुरगढ़ तक इन मराठा सैनिकों का पीछा करके उन्हें मौत के घाट उतारा गया। मराठा सेना केवल 60-70 हजार के बीच थी जबकि अब्दाली की सेना सवा दो लाख थी। मराठा सेना केवल 5 मील तक सीमित थी जबकि अब्दाली की सेना 10-11 मील तक फैली हुई थी। मराठा सैनिकों को पिछले 10 महीनों से वेतन नही मिल रहा था, पिछले कई दिनों से भूखे थे जंग का नगाडा बजने पर भी वे युद्ध करने को तैयार न थे, उनकी

सप्लाई लाइन पूरी तरह से कट चुकी थी, जानवरों को घास-पानी के लाले पड़े हुए थे, मराठा सेना में फूट भी पड़ी हुई थी। ऐसी स्थिति में जबकि पानीपत, करनाल, कुँजपुरा, तरावडी में मुस्लिम सत्ता भी विराजमान थी मराठा सैनिक कैसे भाग कर कहीं छिप सकते थे?

(त) इंसान पिट कर, युद्ध में पराजित होकर अपने घर की ओर भागता है और मराठों का घर कुरुक्षेत्र की ओर नहीं था। सोनीपत और बहादुरगढ़ की घटनाओं के साथ-साथ हजारों मराठा सैनिकों व स्त्रियों-बच्चों का मथुरा से आगे भरतपुर में जाट राजा सूरजमल के यहाँ जाकर शरण लेना तथा ग्वालियर पहुँचना स्पष्ट संकेत देता है कि युद्ध भूमि से मराठा सैनिक कुरुक्षेत्र की ओर नहीं बल्कि महाराष्ट्र की ओर भागे थे। पानीपत शहर में भी हजारों मराठा सैनिकों ने आत्मसर्म्पण कर अपनी जान बचाई थी। अतः कुरुक्षेत्र की ओर भागने की उनकी प्रवृत्ति कतई नहीं थी।

(थ) खतरा टल जाने पर मराठा सैनिक कुरुक्षेत्र के जंगलों से निकल कर वापस महाराष्ट्र जा सकते थे और फिर जंगलों में उन्हें ढूंढ कर पकड़ने व मारने का कौन-सा प्रतिबंध मुस्लिम सेना पर लगा हुआ था? मराठे पानीपत के तीसरे युद्ध में हार अवश्य गये थे लेकिन महाराष्ट्र में उनकी सत्ता अजय अटल रही और बाद में उनका दबदबा पुनः उत्तर भारत की मुगल सत्ता पर कायम हुआ। पूरी सम्भावना बनती है कि मराठा दरबार ने युद्ध में बचे-खुचे मराठा सैनिकों की खोज व उनकी वापसी का अभियान अवश्य चलाया होगा। ऐसी स्थिति में जबकि मराठा घोड़ों की टाप फिर से दरिया अटक से कटक तक सुनाई देने लगी हो, कोई कारण नहीं दिखता कि जंगलों में शरणागत हुए मराठा सैनिक जंगलों में ही छिपे रहे हों और उन्होंने अपने बिछडे परिवारों से पुनः मिलने का प्रयास न किया हो। मराठा सैनिकों की यह कोई पहली हार नहीं थी कि उन्हें शर्मशार होना पड़ा हो, बल्कि इससे पहले भी कई बार उन्हें हार का मूँह देखना पड़ा था और फिर दुगने उत्साह से तैयारी करके उन्होंने दुश्मन के दाँत खट्टे किये थे। सैनिक इतने दुर्बल आत्मा नहीं हुआ करते कि पराजय से शर्मशार होकर कहीं छिपते फिरें क्योंकि पराजय के कई कारण हुआ करते हैं कोई एक कारण नहीं हुआ करता।

(द) सत्ता के मद, अंह और अभिमान में डूबी मराठा शक्ति ने मुसलमानों को ही नहीं बल्कि जाटों, राजपूतों और सिखों को भी चुनौती दे रखी थी, तंग कर रखा था। यही कारण था कि पानीपत की तीसरी लड़ाई में उत्तर भारत की किसी भी राज-शक्ति ने मराठा सेना का साथ नहीं दिया था। यहाँ तक कि जब पानीपत में पराजित होकर मराठा सैनिक महाराष्ट्र की ओर भाग खड़े हुए तो रास्ते में जगह-जगह ग्रामीण जनता ने बदले की भावना से, उनका पीछा किया, उन्हें लूटा और मारा तथा उनकी सूचना पीछा कर रही मुस्लिम सेना को देते रहे। इससे पता लगता है कि मराठा सैनिक कितने उदण्ड व क्रूर थे कि अपने सैन्य अभियान में वे ग्रामीण जनता की फसलों को व गांवों को लूटते-बर्बाद करते व रौंदते हुए जाया करते थे। उत्तर भारत की जनता की सहानुभूति उनके साथ कदाचित नहीं थी। ऐसी स्थिति में मुस्लिम-जाट-राजपूत बहुल क्षेत्र में मराठा सैनिकों का शरणागत होकर बस जाना न तो व्यावहारिक था और न ही सम्भव। रोड़ जाति की उत्पत्ति यदि इन पराजित मराठों से हुई होती तो ग्रामीण क्षेत्र में राजपूत व जाटों के साथ रोड़ों का एक ही गांव में बसना सम्भव ही न होता। जबकि इतिहास गवाह है कि रोड़ जाति मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में मुसलमानों के साथ ही बसी रही है और उनके मुसलमानों से प्रगाढ़ व घनिष्ट सम्बंध रहने की स्पष्ट जानकारी भी मिलती है।

(ध) हाँ एक अन्य सम्भावना यह बन सकती थी कि पराजित मराठा सैनिकों ने 50-60 वर्ष पूर्व बसे पंजाबी अरोड़ों उर्फ रोड़ों के यहाँ शरण ली हो। रोड़ समुदाय उन्हें इस कारण शरण दें सकता था कि वे इस क्षेत्र में नये-नये आबाद हुए थे, अपने को स्थापित करने की प्रक्रिया के दौर से गुजर रहे थे, मरहठों से उनकी कोई खुन्नस या लड़ाई नहीं थी। लेकिन यह सम्भावना इसलिये नहीं बनती क्योंकि रोड़-मरहठा प्रसंग के नियंता यह मान कर चल रहे हैं कि इस क्षेत्र में रोड़ थे ही नहीं, उनकी उत्पत्ति तो बाद में मराठा सैनिकों से हुई थी।

(न) काशीराज के अनुसार 19 अक्तूबर 1760 को कुंजपुरा में भाऊ की मराठा सेना की गिनती हुई थी जिसमें 45 हजार घुड़सवार और 15 हजार पैदल सैनिक थे। बाद में गार्दी के 9 हजार सैनिक या तोपची और आ मिले थे। इस प्रकार मराठा सेना में कुल 69-70 हजार सैनिक थे, कुछ श्रमिक-मजदूर भी रहे होंगे जिनकी गिनती नहीं हुई।

दूसरी ओर अहमदशाह अब्दाली के एक लाख सैनिक अपने थे तथा उसका साथ देने वाले अन्य भारतीयों में शुजाउद्दौला, अहमदखांबंगश, नजीब खां रोहिल्ला, हाफिज रहमत खां रोहिल्ला, दुंदे खाँ, सादुल्ला खाँ के एक लाख चौदह हजार सैनिक अतिरिक्त थे। इतिहास में स्पष्ट रूप से वर्णन मिलता है कि इन 70 हजार मराठा सैनिकों में से 30 हजार तो युद्ध भूमि में ही मारे जा चुके थे। शेष बचे 40 हजार मराठा सैनिकों में से 4 हजार सोनीपत में व 5 हजार बहादुरगढ़ में मुस्लिम सेना ने पीछा करते हुए मार डाले। पानीपत शहर में 15-20 हजार मराठा सैनिकों ने आत्म-सर्म्पण कर अपनी गिरफ्तारी दे दी थी। गंगा तट पर जब भाऊ, विश्वासराव, संताजी बाघ का अन्त्येष्टि संस्कार हुआ तो वहाँ भी दो हजार भगोड़े मराठा सैनिक उपस्थित थे। 20 हजार मराठा सैनिकों, स्त्रियों, बच्चों ने भरतपुर पहुँच कर राजा सूरजमल के यहाँ शरण ली थी। 10 हजार मरहठा सैनिक ग्वालियर पहुंचने में सफल हो गये थे।

55-60 हजार मराठा सैनिकों की इस गिनती से भला कुरुक्षेत्र के जंगलों में छिपने वाले मराठा सैनिक कहां से बच रह सकते थे? मराठा सैनिकों की भागने की दिशा वास्तव में कौन-सी थी इन सब घटनाओं से स्पष्ट हो जाता है। वास्तव में इन मराठा सैनिकों की मानसिकता महाराष्ट्र की ओर भागने की ही थी न कि कुरुक्षेत्र के जंगलों में शरणागत होने की।

(प) मराठा सेना में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र इन चारों वर्णों के सैनिक कर्मचारी व श्रमिक थे और उच्च वर्ण के सैनिक निम्न वर्ण के सैनिक को हेय दृष्टि से तथा निम्न वर्ण के सैनिक उच्च वर्ण के सैनिक को सम्मान की दृष्टि से देखते थे जैसा कि मराठा समुदाय में देखते थे। यदि रोड़ जाति की उत्पत्ति मराठा सैनिकों से होती तो रोड़ समुदाय में इन चार वर्णों अथवा वर्गों अर्थात्, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की अलग-अलग पहचान बनी रहनी चाहिए थी जो बिल्कुल नहीं बनी हुई है। अतः मराठों से रोड़ों की उत्पत्ति नितांत कल्पित मिथक है, इसमें शतांश भी सच्चाई नहीं है।

(फ) रोड़ जाति की उत्पत्ति के सम्बंध में अनेक अवधारणाएँ, प्रस्थापनाएँ, किवदंतियाँ और मिथिक प्रचलित हैं, ठीक वैसे ही जैसे राजपूतों, जाटों, गूजरों, अहीरों आदि की उत्पत्ति के सम्बंध में प्रचलित हैं। इस स्थिति के चलते और इन समस्त विश्वासों का जोरदार खण्डन किये बिना मनमाने ढंग से इतिहास लेखन की मान्य परम्पराओं का निर्वाह किये बिना कल्पना प्रसूत निष्कर्ष निकाल लेना और बिरादरी के बुद्धिजीवी वर्ग को विश्वास में लिये बिना उसका ढिंढ़ोरा पीट देना औचित्यपूर्ण प्रयास नहीं माना जा सकता। ऐसे प्रयास में दुराग्रह की झलक अधिक दिखाई देती है। राजनीतिक स्टंटबाजी से अथवा इतिहास का उपहास कर किसी ब्यान को इतिहास नहीं बनाया जा सकता। किसी भी ऐतिहासिक निष्कर्ष की घोषणा अथवा पब्लिसिटी तब तक नहीं की जानी चाहिए थी जब तक कि उसे इतिहास की कसौटी पर भलीभाँति जाँच नहीं लिया जाता। ऐसे किसी निष्कर्ष की पुष्टि यदि ऐतिहासिक दस्तावेजों, साक्ष्यों, पुरातत्वीय सामग्री से हो जाती तो सोने में सुहागा हो जाता। पारस्परिक संवाद अथवा गोष्ठियों का आयोजन करके भी ऐसे गम्भीर और दूरगामी मसलों पर विचार-विमर्श किया जा सकता था। लेकिन रोड़-मराठा प्रसंग में हो यह रहा है कि गली-कूचों में, राजनीतिक मंचों से भीड़ से नारेबाजी करा कर, लट्ठ का जोर दिखा कर जबरदस्ती लोगों के मूँह से एक सफेद झूठ को उगलवाया जा रहा है। यही कारण हे कि इस प्रकार लिये गये फैसलों के पीछे अनेक शंकाएँ छाया बन कर चिपट जाया करती हैं और तब तक चिपटी रहती हैं जब तक कोई बुद्धिसंगत, तर्कसंगत, इतिहास सम्मत समाधान नहीं दे दिया जाता। ऐसे समाधानों की अपेक्षा उन लोगों से नहीं रखी जा सकती जो इतिहास की मान्य परम्पराओं के प्रति सम्मान रखना नहीं जानते। अतः देर-सवेर रोड़ मराठा प्रसंग के खर्रपच्चे उड़ना तय है।

उपर्युक्त बाइस आपत्तियों को दृष्टिगत रखते हुए यही कहा जा सकता है कि रोड़ मराठा प्रसंग वास्तव में राजनीतिक स्टंटबाजी और इतिहास का उपहास है और इसी कारण गत अंक के सम्पादकीय में इस प्रयास को 'सोने की थालनी में गोबर' की संज्ञा दी गई थी । एक पृष्ठ के तथाकथित पर्चे में और भी अनेक उल्टी-सीधी बातें लिखी गई हैं जिन पर काफी कुछ लिखा जा सकता है। लेकिन इन प्रसंगों पर यहाँ हम संक्षेप में चर्चा करेंगे।

1 इस पर्चे में लार्ड कनिंघम को उद्धृत करते हुए कहा गया है कि आगरा की बावन गढियों का मूलोच्छेदन कुतुबदीन एबक ने तेरहवीं सदी अर्थात् सन् 1208 में किया था। इन गढियों पर राजा रोड़ की सत्ता थी ओर उससे कुतुबद्दीन ने उसकी कन्या का डोला मांगा था। लेकिन राजा रोड रक्षाबँधन वाले दिन यहाँ से पलायन करके महाराष्ट्र के पश्चिमी घाट में जा बसा। उसके साथ और भी अनेक लोग गये जो रोड़ बने। ये सभी निष्कर्ष कनिंघम के न होकर रोड़ मरहठा प्रसंग के नियंताओं के खुद के हैं और जबरन कनिंघम के मूँह से कहलवा कर प्रचारित किये जा रहे हैं। इससे स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि कैसे घिनौने तरीके से इतिहास का चीर-हरण किया जा रहा है। डॉ० राजपाल सिंह ने भी 'रोड़ इतिहास की झलक' पुस्तक में इस प्रसंग को उठाया है लेकिन एक दूसरे ही रूप में। यदि महाराष्ट्र में राजा रोड़ के समय में ही रोड़ों की उत्पत्ति हो चुकी थी तो फिर पानीपत की तीसरी लड़ाई के बाद उनकी उत्पत्ति मराठों से क्योंकर मानी जा रही है?

2 इस तथाकथित पर्चे में लिखा गया है कि कुछ गोत्र केवल रोड़ों व मराठों में ही मिलते हैं जैसे भाऊ, गोरे, झांकले, बोदले, बालदे, टाया इत्यादि। फिर आगे लिख मारा है कि रोड़ों के बाकी सारे गोत्र भी मराठों में पाये जाते हैं। रोड़ों के तमाम गोत्रों तथा मराठों के 22 वंशों तथा 96 कुलों (गोत्रों) की सूची 'रोड़ द्रष्टा' के आगामी अंक में दी जा रही है। पाठक वृन्द इन दोनों सूचियों का तुलनात्मक अध्ययन स्वयं करके देख लेंगे कि रोड़ -मराठा प्रसंग के नियंताओं के दावों में कितनी सच्चाई है। गोरा गोत्र जाटों में भी उपलब्ध है। भाऊ गोत्र को छोड़ कर शेष गोत्र झांकले, बोदले, बालदे, टाया की उत्पत्ति राजपूतों के वंशों से हुई मानी जाती है अतः इन गोत्रों को मराठों से आये गोत्र मानना दुराग्रह ही माना जायेगा। वैसे भी गोत्रों की कहानी इतनी विचित्र है कि इनके आधार पर किसी जाति के उद्भव का निष्कर्ष निकाल लेना टेढी खीर है। रोड जाति के अनेक गोत्र राजपूतों, जाटों, अहीरों, गूजरों पंजाबी अरोड़ों में भी मिलते हैं तब क्या रोड़ों की उत्पत्ति इन सभी जातियों से मान लेनी होगी? आखिर यह कैसे सम्भव हो सकता है? सन् 1938 में हरनाम सिंह मोगा ने भी अरोड़ वंश में मराठों के गोत्र होने की बात कही थी लेकिन उन्होंने इस पर खोज करने का बल दिया था न कि अरोड़ वंश को मराठों का वंशज मानने की भूल की थी।

3 पर्चे में आगे कहा गया है कि 'जय रोया', बड़ा मराठा, छत्रपति की जय कहने का रिवाज केवल रोड़ समुदाय में है। इन तीनों शब्दों का प्रचलन पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उत्तराखण्ड के रोड़ समुदाय में कतई नहीं है। क्या इसका अर्थ यह निकाला जाये कि केवल हरियाणा की रोड़ बिरादरी मरहठों से पैदा हुई थी? 'जय रोया' शब्द का रिवाज पंजाब में भी है अतः इस शब्द पर केवल रोड़ जाति का एकाधिकार मानना गलत है। जिस क्षेत्र विशेष में इस शब्द का प्रचलन है उस क्षेत्र विशेष के सभी ग्रामीण समुदायों में इसका रिवाज है न कि केवल रोड़ समुदाय में। जब से रोड़ मरहठा प्रसंग चला है उससे पूर्व कभी भी किसी सभा, गोष्ठी, जलसे, सम्मेलन में छत्रपति की जय का समाघोष सुनाई नहीं देता था। यह सरासर झूठ है कि इसका रिवाज रोड़ों में पुराना है। फिर 'जय रोया' शब्द हरियाणवी शब्द है अतः मराठा स्त्रियाँ मराठी भाषी होने के कारण इस शब्द का उच्चारण क्योंकर कर सकती थीं? जय रोया का तात्पर्य है जय के लिये रोने वाला। हरियाणा में इससे पूर्व पानीपत और तरावडी में दो-दो निर्णायक लड़ाइयाँ लड़ी जा चुकी थीं और उनमें से कुछ लडाइयों में भारतीय पक्ष की पराजय हुई थी। अतः 'जय रोया' शब्द की शुरुआत पानीपत की तीसरी लडाई से पूर्व ही माननी होगी।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि रोड मराठा प्रसंग के नियंता एक नियोजित ढंग से अपना अभियान चला रहे हैं और उन्हें भारी सफलता भी मिल रही है। लेकिन इस सफलता का अर्थ यह नहीं माना जाना चाहिए कि रोड मराठा प्रसंग का ऐतिहासिक पक्ष मजबूत है। यह सफलता तो उनके प्रचार-तन्त्र और योजनाबद्ध अभियान की मानी जानी चाहिए। इस प्रचार-तन्त्र व नियोजित अभियान की जब कोई काट पैदा होगी तो यह सफलता स्वतः ही कपूर बन कर हवा में गुल हो जायेगी।

'रोड़ द्रष्टा' के पिछले अंक में रोड़ मरहठा प्रसंग की सांकेतिक आलोचना की गई थी। इस अंक में इतिहास को दृष्टिगत रखते हुए शंकाएँ उठाई गई हैं जिससे कि पाठक गण इतिहास का अध्ययन स्वयं कर सकें। रोड़ द्रष्टा का अगला अंक पिछले अंक की तुलना में और अधिक जानकारी लेकर आयेगा जिसमें रोड़ मराठों के गोत्रों की सूची आमने सामने होगी और बिरादरी जन इनकी तुलना करके स्वयं इस निष्कर्ष पर पहुंच सकेंगे कि कैसे एक कल्पना की उडारी भर कर एक झूठ को बांस पर चढ़ा कर सच बनाया जा रहा है। रोड बिरादरी के गले की फांस बनाया जा रहा है। ''रोड़ः उद्भव एवं विकास'' यह पुस्तक भी शीघ्र प्रकाशित होकर पाठकों को उपलब्ध होगी। इस पुस्तक को जनवरी 2003 तक प्रकाशित करने की हमारी इच्छा थी लेकिन बिरादरी बन्धुओं से जिस तत्परता से आर्थिक सहयोग मिलने की अपेक्षा व आशा रखी गई थी वह अभी तक फलीभूत नहीं हो सकी है। अतः इसके प्रकाशन में न चाहते हुए भी देरी हो रही है।

बिरादरी बन्धुओं से मेरी अपील है कि वे आत्म-प्रेरणा और स्व-विवेक से आर्थिक सहयोग देने की मानसिकता बनायें। 51-51 सौ देने वाले केवल दस सहयोगी पूरी रोड़ बिरादरी से यदि निकल आते हैं तो पुस्तक उपलब्ध होने में कुछ भी समय नहीं लगेगा। झूठ को सहने का अर्थ है झूठ का पोषण करना अतः झूठ का मुकाबला हमें पूरे जोर के साथ करना चाहिए जिससे वह दोबारा पनप ही न सके। यदि कोई भाई 51 सौ रुपये देने की स्थिति में नहीं है तो वह इसके लिये किसी साधन-सम्पन्न बन्धु को प्रेरित तो कर सकता है। यदि दुर्भाग्य से इतना प्रयास भी नहीं किया जा सकता तो गाँव स्तर पर धन संग्रह करके पचास हजार रुपये इक्ट्ठा किये जा सकते हैं। बिरादरी जितने जोश से रोड़ मरहठा प्रसंग का जयकारा लगा चुकी है उतने ही होश से यदि हमारा साथ दे तो मिथ्यात्व के इस पिशाच को बोतल में बन्द करके दफन किया जा सकता है। यदि यह पिशाच खुला रहता है तो चाहे-अनचाहे जाने-अनजाने यह रोड़ बिरादरी का इतना भारी अहित कर बैठेगा कि उसकी कल्पना आज सहज रूप में नहीं की जा सकती। कुछ दिग्भ्रमित भाईयों ने इस पिशाच को अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये पैदा तो कर लिया है लेकिन अब उनके लिये इस पिशाच को संभालना स्वयं में एक विड़म्बना बन जायेगी। इस पिशाच से जिन दुष्परिणामों की झलक मिलनी शुरू हो चुकी है उसका दिग्दर्शन हम अपने पाठकों को 'रोड़ द्रष्टा' के आगामी अंक में कराने का प्रयास करेंगे। फिल्हाल आप उन बातों पर विचार करें जो ऊपर विस्तारपूर्वक लिखी गई हैं और इन बातों को लेकर बिरादरी में, आपस में, खुली बहस चलायें जिससे बिरादरी में ऐसा वातावरण तैयार हो सके, ऐसी मानसिकता विकसित हो सके, ऐसी सोच पैदा हो सके जिससे मिथ्यात्व के पिशाच अर्थात् रोड मराठा प्रसंग की जल्द इतिश्री हो सके।

पिछले दिनों मुझे करनाल, कुरुक्षेत्र, पानीपत जाना पड़ा। अनेक लोगों के रोड़ मरहठा प्रसंग पर विचार सुने जिन्हें सुनकर मुझे उस कौए की कहानी याद आ गई जिसे मोर की धज मिल गई थी। उस मोरधज को अपने पंख में लगा कर वह कौआ मोर की चाल चलने लगा। मोरों ने तो उसे दुतकार दिया लेकिन उसकी शक्ल, चाल और आवाज सुन देख कर कौओं की बिरादरी ने भी उसे ठुकरा दिया। न वह घर का रहा न घाट का, न दीन का रहा न जात का। रोड मरहठा प्रसंग की नियति भी इसके नियंताओं, समर्थकों व प्रचारकों को इसी घाट की ओर धकेल रही है। रोड़-मरहठा प्रसंग इनके लिये साँप के मूँह में छछूंदर वाली कहावत सिद्ध होगा जिसे न ये निगल सकेंगे और न उगल सकेंगे। स्वामी ब्रह्मानन्द जी बहुत पहले कह चुके हैं:

सत्य की हमेशा जीत है, झूठ चले नहीं पैर।
झूठ मंडासा बाँधकर, किसे मिली है खैर।।

रोड़ चेतना मंच (रजि.)
वाई 454/455, सुल्तानपुरी मार्ग,
नांगलोई, दिल्ली - 110 041

प्रेस नोट

डॉ० सुरेन्द्र कादियाण ने उड़ाई जुगाड़ी रोड़-मराठों की धज्जियाँ

कहाः रोड़ जाटों, मराठों, राजपूतों के नहीं अरोडों के वंशज हैं :-

अन्य मार्शल रेसज़ की तरह रोड़ जाति की उत्पत्ति को लेकर भी अर्से से मतभेद बना हुआ है। इस जाति के भाट राजपूतों से इसकी उत्पत्ति मानते हैं जबकि सर्वखाप पंचायत, शोरम (मुजफ्फरनगर) का रिकार्ड इसे जाट जत्थे का अंग मानता है। 'रोड़ इतिहास की झलक' पुस्तक के लेखक डॉ० राजपाल सिंह ने कनिंघम के सर्वे के आधार पर इसकी उत्पत्ति कागारोल (आगरा) से मानी है तो डॉ० हरनाम सिंह मोंगा ने इसे पंजाबी अरोड़ों की शाखा माना है जो औरंगजेब के शासन काल में गढ़ी पुख्ता व गढी खास (मुजफ्फरनगर) में मुलतान से आकर बसे थे। पिछले साल, सवा-साल से इस शृंखला में एक नया अध्याय वीरेन्द्र वर्मा व उनके साथियों ने यह प्रचारित करते हुए जोड़ दिया कि रोड़ जाति की उत्पत्ति उन मराठों से हुई जो पानीपत की तीसरी लड़ाई के बाद कुरूक्षेत्र के जंगलों में शरणागत हो गये थे।

इस नये विचार को लेकर रोड़ बिरादरी में जबरदस्त प्रतिक्रिया देखने को मिली जिसका प्रतिनिधित्व रोड़ महासभा, करनाल ने किया। इस विरोध का मुख्य कारण यह था कि रोड़-मराठों ने उक्त सभा के प्रधान श्री सुरेन्द्र बब्बू की सत्ता को ललकारते हुए रोड़ धर्मशालाओं पर कब्जा करने की मंशा जाहिर की थी। मात्र अपनी प्रधानी बचाने के लिये सुरेन्द्र बब्बू को रोड-मराठों के विरुद्ध कमर कसने पर मजबूर होना पड़ा अन्यथा रोड़-मराठों के दावे को काटने का सशक्त हथियार रोड़ महासभा के पास नहीं था। इस अभाव की पूर्त्ति रोड़ चेतना मंच, दिल्ली के माध्यम से डॉ० सुरेन्द्र सिंह कादियाण ने 'रोड़ द्रष्टा' पत्रिका का प्रकाशन पुनः शुरू करके की। उनकी धारधार पैनी लेखनी ने 'रोड़ द्रष्टा' के माध्यम से रोड-मराठा थ्यौरी के विरुद्ध आग उगलनी शुरू कर दी जिसका कोई जवाव रोड़-मराठों के पास नहीं था।

डॉ० सुरेन्द्र कादियाण ने मराठा-इतिहास का मंथन करके अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का प्रस्तुतीकरण कर अपने अकाट्य तर्कों से यह सिद्ध कर दिखाया कि गोत्र, शक्ल-सूरत, रीति रिवाज, पहनावा-खानपान,, तीज-त्यौहार, भाषा-व्यवहार किसी भी स्तर पर रोड़ व मराठों की अभिन्नता सिद्ध नहीं होती अतः रोड़ मराठा मूवमेंट मात्र राजनीतिक स्टंटवाजी और इतिहास का उपहास है। इस मूवमेंट के जरिये रोड़ जाति के युवा वर्ग को भ्रमित करके कुछ चालाक लोग अपनी राजनीतिक पृष्ठभूमि तैयार करने का जुगाड़ कर रहे हैं। 'रोड़ द्रष्टा' में मराठों व रोडों के सौ-सौ गोत्र प्रकाशित करके उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि मराठों का एक भी गोत्र रोडों के गोत्र से नहीं मिलता। उन्होंने जाति भाटों के कथन और सर्वखाप पंचायत के रिकार्ड पर भी सन्देह प्रकट करते हुए उसे जाली व अप्रमाणिक करार दिया है। अपने मत को और अधिक पुष्ट करते हुए तथा रोड़ जाति की उत्पत्ति को लेकर विविधि मान्यताओं पर सांगोपांग मंथन करते हुए डॉ० सुरेन्द्र सिंह कादियाण ने नौ बिन्दुओं की एक कसौटी तैयार की। इन नौ विन्दुओं की कसौटी पर सबसे अधिक खरी वह मान्यता उतरी जिसमें रोडों को पंजाबी अरोड़ों की शाखा माना गया है। अरोडों की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि महाभारत काल का राजन्य-गण ही रोहितायन, रोड़वाल, रोड़, रोड़े, अरोड़ा आदि विविध स्वरूपों में विकसित होते हुए क्रमशः हरियाणा, सिन्ध, पंजाब, राजस्थान, गुजरात आदि प्रदेशों में फैला जिसकी पुष्टि सुप्रसिद्ध विद्वान् राहुल सांकृत्यायन की खोज से हुई है। एक समय था जब हरियाणा का रोहतक-महम-सिरसा का क्षेत्र रोड़वाल कहलाता था। अपने इस विस्तृत चिंतन और मंथन को "रोड़ : उद्भव एवं विकास"

शीर्षक पुस्तक में लिपिबद्ध करते हुए डॉ० सुरेन्द्र सिंह कादियाण ने इस समूचे विवाद पर विराम लगा दिया है। रोड़ चेतना मंच, दिल्ली द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक की भूमिका हरियाणा के सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० के०सी० यादव ने लिखी है जिन्हें रोड़-मराठा मूवमेंट के नेता प्रायः अपने मंचों से भाषणों में उद्धृत करते रहे हैं। डॉ० सुरेन्द्र ने भारत इतिहास संशोधक मण्डल, पुणे द्वारा प्रकाशित शंकर पुरुषोत्तम जोशी की पुस्तक'' मराठयांच्या सत्तेचा उत्तरेकडील विस्तार (1937) और पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ द्वारा प्रकाशित डॉ० हरिराम गुप्त की पुस्तक ''मराठाज एण्ड पानीपत'' (1961) के हवाले से स्पष्ट किया है कि हरियाणा में मराठा परिवारों के अस्तित्व को लेकर सन् 1933 और सन् 1960-61 में जो दो महत्वपूर्ण एवं विस्तृत सर्वे हो चुके हैं उनमें कहीं भी किसी रोड़ परिवार के मराठा होने की बात सामने नहीं आयी थी। रोड़ जाति में राजपूतों, जाटों, अहीरों, गूजरों, पंजाबी अरोड़ों के जो गोत्र मिल रहे हैं उनका स्पष्टीकरण देते हुए डॉ० सुरेन्द्र ने बताया है कि पंजाबी अरोडों द्वारा इन जातियों में अन्तर्जातीय विवाह करने के कारण ही यह स्थिति पैदा हुई है। उन्होंने सम्भावना व्यक्त की है कि चूंकि हरियाणा में रोड़ अपने को स्थापित करने की प्रक्रिया से गुजर रहे थे और उनमें मराठों के प्रति वह आक्रोश नहीं था जो स्थानीय राजपूत, जाट, गूजर जातियों में था अतः कुछ मराठा नर-नारी इस जाति में शरण लेने को विवश हुए होंगे लेकिन इससे यह नहीं माना जा सकता कि रोड़ों की उत्पत्ति मराठों से हुई थी। अहीरों में भी मराठों के कुछ गोत्र मिलते हैं लेकिन इससे अहीर मराठों के वंशज नहीं ठहराये जा सकते।

डॉ० सुरेन्द्र सिंह कादियाण की यह पुस्तक रोड़ बिरादरी के हरियाणा, यू.पी., दिल्ली स्थित प्रबुद्ध बुद्धिजीवियों और पंचायत रोड़ान, मोहल्ला कोट, करनाल द्वारा दिये गये लगभग 60 हजार रुपये के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित हुई है। जाहिर है रोड़ बिरादरी का भरपूर सहयोग व समर्थन डॉ० सुरेन्द्र द्वारा निकाले गये निष्कर्षों को मिल रहा है। 'रोड़ महासभा', करनाल के महासचिव एवं 'रोड़ एम्पलाईज एसोसियेशन' के अध्यक्ष डॉ० महेन्द्र कुमार चौधरी ने भी इस प्रयास के लिये डा० सुरेन्द्र के प्रति अपना आभार प्रकट किया है। दल-गत राजनीति में धंसने के बाद जुगाड़ी रोड़-मराठों की मूवमेंट ठंडी पड़ गयी है और इस पुस्तक के प्रकाशित होने से अब इस मूवमेंट की कमर ही टूट जायेगी।

संयोजक
रोड़ चेतना मंच